International Journal of Sanskrit Research 2023; 9(2): 285-288

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2023; 9(2): 285-288
© 2023 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 03-01-2023
Accepted: 11-02-2023

कोमल टॉक
शोधार्थी, संस्कृत विभाग,
मोहनलाल सुखाड़िया
विश्वविद्यालय, उदयपुर,
राजस्थान, भारत

Corresponding Author:
कोमल टॉक
शोधार्थी, संस्कृत विभाग,
मोहनलाल सुखाड़िया
विश्वविद्यालय, उदयपुर,
राजस्थान, भारत

भास और कालिदास के रूपकों में आर्थिक चिंतन

कोमल टॉक

सारांश
वर्तमान मानव समाज में परिस्थितियों से ज्ञात होता है कि धन का मानव समाज में विशेष महत्व है। जब तक व्यक्ति धनवान होता है उसका गुणगान होता है और उसका आदर, सम्मान होता है। धन जाते ही किसी भी व्यक्ति का अस्तित्व समाप्त हो जाता है मनुष्य का शरीर पहले जैसा ही रहता है आंख, कान, नाक, हाथ, पैर सब पहले जैसे बने रहते हैं। अपने सारे कार्य भी वह पहले जैसे ही करता है इंद्रियों का व्यापार भी पहले जैसा ही बना रहता है। मस्तिष्क भी वैसा ही कार्य करता है। अर्थ के अभाव मात्र से मस्तिष्क का रूप नहीं बदलता। धन का ज्ञान से बुद्धि से सीधा संबंध नहीं है। ज्ञानी और विद्वान व्यक्ति निर्धन भी हो सकता है। परंतु वर्तमान समय में हम देखते आ रहे हैं कि धन का अभाव होते ही उसका विशेष व्यक्तित्व समाप्त हो जाता है। मनुष्य के सब गुण रंग-रूप आकार प्रकार बोलचाल पूर्ववत् रहते हैं— किंतु एक धन का अभाव होते ही क्षणभर में उसका सामाजिक व्यक्तित्व धूल में मिल जाता है। हमारी समाज-रचना इस प्रकार की है कि उसमें धन का स्थान सबसे ऊंचा हो गया है।

कूटशब्द : मानव समाज, भास, कालिदास

प्रस्तावना
पुरूषार्थ चतुष्टय में स्थान पाने वाले का अर्थ का व्यवहारिक जगत में अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। ऊँचे कुल में जन्म लेना मनुष्य के अधीन नहीं, किन्तु कुलीन होना मनुष्य के अधीन है। यदि वह पुरूषार्थ से या कौशल से धनोपार्जन कर लेता है तो वह कुलीन होने का अभिमान कर सकता है। अपने वंश को भी विरासत में कुलीनता प्रदान कर सकता है। धन सभी व्यक्ति को प्रिय होता है। और भाग्य से ही इसकी प्राप्ति होती है। इस भाव को महाकवि कालिदास ने इन शब्दों में व्यक्त किया है। '

लभेत वा प्रार्थयिता न वा श्रियम्, श्रिया दुरापः कथमीप्सितो भवेत्?'[1]

अर्थात किसी प्रार्थना करने वाले को लक्ष्मी मिले न मिले परंतु लक्ष्मी के द्वारा चाहा हुआ उसके लिए कैसे अप्राप्य हो सकता है?

महाकवि कालिदास के समय पिता की सम्पत्ति पर पुत्र का अधिकार होता था। अभिज्ञानशाकुन्तलम् में उन्होंने बताया है—

ननु गर्भ: पित्र्यं रिक्थमर्हति।[2]

प्राचीन भारतीय राजनीति का यह बहुत उदात्त पक्ष है जो प्रजा के हित में है। अभिज्ञान के षष्ठ अङ्क में उद्यान में विदूषक राजा को शकुन्तला का चित्र दिखलाता है। चित्र देखकर राजा वियोग के आँसू बहाता है और स्वयं को अपराधी स्वीकार करता है। इसी बीच प्रतिहारी महामात्य का एक पत्र लेकर आती है जिसमें धनमित्र नामक व्यापारी की नौका दुर्घटना में मृत्यु हो जाती है और मंत्री ने उसके सन्तानहीन होने के कारण उसकी समस्त सम्पत्ति को राजकोष में ले लेने की अनुमति माँगी है। पत्र पढ़कर राजा कहता है कि नि:सन्तान होना भी कितना कष्टकारक है। प्रतिहारी से यह जानकर कि उस व्यापारी की अनेक पत्नियों में से आयोध्यावासी श्रेष्ठी की पूत्री गर्भवती है, राजा को एक आधार मिल जाता है और वह महामात्म्य की प्रार्थना को निरस्त कर आदेश देता है कि गर्भस्थ शिशु भी पैतृक सम्पति का उत्तराधिकारी होता है। अत: व्यापारी की मृत्यु के पश्चात् उसकी सम्पत्ति राजकोष में नहीं ली जा सकती और वह बालक ही उस सम्पत्ति का स्वामी बनेगा।

ओ हि वर्तन्ते रथ्येव चक्रा,अन्यमन्यमुपतिष्ठन्त राय:।[3]

अर्थात जैसे रथ का पहिया इधर-उधर नीचे-ऊपर घूमता है, वैसे ही धन भी विभिन्न व्यक्तियों के पास आता जाता रहता है, वह कभी एक स्थान पर स्थिर नहीं रहता।

आधुनिक युग में तो अर्थ ही सर्वोपरि है। धन के कारण मनुष्य का समाज मे विशेष व्यक्तित्व बनता है। उसका आदर होता है। गुणगान होता है। उसे ऊँचा आसन मिलता है। कालिदास के अनुसार—

''सर्व:कल्पे वयसि यत्तते लब्धुमर्थान् कुटुम्बी,
पश्चात् पुत्रैरपहृतभर: कल्पते विश्रमाय।[3]

अर्थात् सभी कुटुम्बी लोग युवावस्था में धन कमाने का प्रयत्न करते हैं, तदनन्तर वृद्धावस्था में पुत्रों द्वारा पारिवारिक भार हटा दिये जाने पर विश्राम करने की कल्पना करते हैं। अर्थात् कालिदास के समय में भी सभी परिवार जन युवावस्था में धन कमाने का प्रयास करते रहते थे और फिर बुढापे में अपना सारा भार पुत्रों पर डालकर विश्राम करते थे।

''अतनुषु विभवेषु ज्ञातय: सन्तु नाम''[5]

अर्थात वैभव की विशालता होने पर रिश्तेदारी (ज्ञानि) वाले भाई-बन्धु स्वयं ही बन जाते है। समाज में सभी व्यक्ति समान नहीं होते है कुछ धनवान तो कुछ निर्धन होते है। दोनों के प्रति अन्य व्यक्तियों का व्यवहार भिन्न-भिन्न प्रकार का होता है जो धन की महत्ता को ही प्रदर्शित करता है। निर्धन का स्वजन बन्धु-बान्धव भी तिरस्कार करते हैं। धन सम्पन्न व्यक्तियों को स्वजनों की सहानुभूति की कोई आवश्यकता नहीं। धन का ही आकर्षण इतना होगा कि दूर के लोग भी उनसे नाता-रिश्ता बनाने में अहोभाग्य मानेंगे । और निर्धन के प्रति उदासीन दृष्टि रखते है। अर्थात् धन के आधिक्य के कारण अति निकट और हितैषी बनने का दिखावा करते है।

अन्यत्र भी कहा है–

यस्यार्थास्तस्य मित्राणि यस्यार्थास्तस्य बान्धवा:।
यस्यार्था: स पुमाँल्लोके यस्यार्था: स च पंडित:।।

इसी का समर्थन करते हुए भास के शब्दों मे -

उद्धृतपुष्पं सहकारं मधुकरा उपासते।[6]

अर्थात् खिले हुए पुष्प वाले आम्र- वृक्ष के पास ही भ्रमर रहते हैं।

"परिभवा स्पदं दशाविपर्यय:"[7]

अर्थात अवस्था का विपर्यय (परिवर्तन) तिरस्कार का घर होता है ।आधुनिक युग में भी समाज में यही होता है कि अत्यंत दुर्गुणी होने पर भी समाज में मनुष्य का समादर होगा, यदि वह श्री - संपन्न होगा । दुराचारी, दंभी, कृपण और कृतघ्न व्यक्ति भी समाज में सिर उठाकर चलेगा। लेकिन सदाचारी विनम्र और उदार और कृतज्ञ व्यक्ति का भी निर्धन होने पर सर्वत्र निरादर होगा।

समाज में भी यही देखा जाता है जिस व्यक्ति के पास धन-सम्पदा की अधिकता है। सगे-सम्बन्धि और व्यवहारजन उसी से रिश्ता रखना पसंद करते है। धन के मुकाबले शौर्य का भी कोई मूल्य नहीं। पैसा सबसे बड़ा बन गया है। निर्धन व्यक्ति के अपार कष्टों का उल्लेख भास ने विस्तार से किया है यथा -

''सुखात्तु यो याति दशां दरिद्रतां।
स्थित: शरीरेण मृत: स जीवति।।''[8]

अर्थात् जो व्यक्ति सुख की अवस्था से दुख की दशा को प्राप्त होता है वह तो शरीर धारण करके भी मरे हुए के समान जीवन जीता है। धनी और निर्धन के प्रति दूसरों के व्यवहार के इस महान अन्तर की वजह से धनवान से निर्धन बने व्यक्ति का विशेष दु:खी होना स्वाभाविक ही प्रतीत होता है। ऐसा व्यक्ति स्वयं को किसी का सामना करने के काबिल नहीं समझता है जैसे उसने कोई बड़ा गुनाह कर दिया हो। धन जाते ही सम्पूर्ण व्यक्तित्व की ऊँची मीनार गिर जाती है। इसी विषय में भास कहते है कि–

शङ्कनीया हि दोषेषु निष्प्रभावा दरिद्रता।।[9]

निर्धनता के कारण व्यक्ति में दोष न होने पर भी निष्प्रभाव, निस्तेज और शंकनीय हो जाता है। मनुष्य का या उसकी ईमानदारी का कोई मूल्य नहीं है यदि उसके पास धन -सम्पदा नहीं है। चारूदत्त में भी विदूषक और नायक संवाद में नायक अपने मन में यही सोचता है मेरी दरिद्रता के कारण कोई मुझ पर विश्वास नहीं करेगा। सब लोग मुझे ही चोर बताएंगे। सामान्य जीवन में भी यही होता है। बन्धु-बान्धव भी निर्धन के वाक्यों का विश्वास नहीं करते है। यथा -

दारिद्रयात् पुरूषस्य बान्धवजनो वाक्ये न संतिष्ठते।।[10]

अर्थात् गरीबी के कारण व्यक्ति का कुटुम्ब या बान्धव वर्ग भी वाणी पर विश्वास नहीं करता है। दरिद्रता के कारण मनस्विता हास्य का विषय बन जाती है। शीलयुक्त व्यक्ति की कान्ति भी मलिन हो जाती है। बिना किसी वजह के ही मित्रलोग विमुख हो जाते है, आपत्तियों से ग्रस्त हो जाता है। पापकर्म किसी और व्यक्ति के द्वारा करने पर भी दरिद्रता के कारण लोग उसी को दोषी मानने लगते है। अर्थ के अभाव में इंसान को नित्य नये-नये कष्टों का सामना करना होता है –

दारिद्रयं खलु नाम मनस्विन: पुरूषस्य सोच्छ्वासं मरणम्।[11]

अर्थात् दरिद्रता मनुष्य के लिए सांस रहते हुये भी मरण के समान है।

अन्यत्र कहा गया है-

वित्तं जीवितमग्र्यं जीवितहानिर्धनत्याग:।।[12]

धन जीवन का सर्वोपरि साधन है अत: उसका नाश जीवन की हानि है। भास के अनुसार दरिद्र अवस्था में भी एक स्थिति ऐसी होती है जिसमें व्यक्ति को धनवान माना जा सकता है -

धर्मार्थं यस्य वित्तेहा वरं तस्य निरीहता।
प्रक्षालनाद्धि पंकस्य श्रेयो न स्पर्शनं नृणाम्।।[13]

अर्थात जो धर्म करने के लिए धनोपार्जन की इच्छा करता है, उसका धन की इच्छा न करना ही अच्छा है। कीचड़ लगाकर धोने की अपेक्षा मनुष्यों के लिए उसका स्पर्श न करना ही श्रेष्ठ है।

विभवानुवशा भार्या समदु:खसुखो भवान्।
सत्वं च न परिभ्रष्टं यद् दरिद्रेषु दुर्लभम्।।[14]

विपुल विभव के कारण सर्वदा पास रहने वाली भार्या तथा सुख एवं दु:ख में समान रूप से आप जैसे सहृदय बन्धु (मित्र) साथ है और सत्वशाली मन भी पथभ्रष्ट नहीं हुआ है, जबकि ये तीनों दरिद्रावस्था में दुर्लभ है। अर्थात् दरिद्रावस्था में भी गुणग्रहिणी पत्नी, सहृदय मित्र तथा सन्मार्गगामी मन का जब सानिध्य होता है तो वह व्यक्ति सबसे धनवान होता है।

विभावितैकदेशेन देयं यदभियुज्यते।[15]

यही सामाजिक व्यवस्था है अथवा नियम है कि जिसके पास चोरी का कुछ सामान पाया जाता है, उसे सारा सामान देना पड़ता है।

अर्थस्य पुरुषो दासो दासस्त्वर्थो न कस्यचित्।[16]

अर्थात् पुरुष अर्थ का दास है। अर्थ किसी का दास नहीं है।

संदर्भ

1. अभिज्ञान.- ३/१२
2. अभिज्ञान 6/25 पूर्व
3. ऋग्वेद (१०/११७/५)
4. विक्रमोर्वशीयम् 3/1
5. अभिज्ञान 5/7
6. चारूदत्त - अंक 2, पृ. 47
7. विक्रमोर्वशीयम्४/३३
8. चारूदत्त - 1/3
9. चारूदत्त - 3/15
10. चारूदत्त - 1/6
11. चारूदत्त, पृ. 10, अंक - 1
12. क्षेमेन्द्र (कलाविलास)
13. वेदव्यास (महाभारत, वनपर्व, २/४९
14. चारूदत्त - 1/7
15. विक्रम.-४/३४
16. वेदव्यास महाभारत, शांतिपर्व, ८/१९